पेरिस
१४ जून, २००६

संदेश संख्या – ६५

सहिष्णुता

कभी–कभी कुछ आराम–पसन्द 'बुद्धिजीवियों' द्वारा यह कहा जाता है कि शिवेन्दु विश्वास–पद्धतियों के बारे में असहिष्णु हैं तथा मार्गदर्शकों की निन्दा करते हैं । सहिष्णुता क्या है? निन्दा क्या है? किसी को सहिष्णु या असहिष्णु क्यों होना चाहिए? क्यों किसी की प्रशंसा या निन्दा करनी चाहिए? क्या यह सम्भव नहीं है कि व्यक्ति इन परस्पर विरोधों से मुक्त रहे तथा इनसे तटस्थ बना रहे ?

सहनशीलता हो या असहनशीलता, प्रशंसा हो या निन्दा, तथ्यों का इनसे कुछ भी लेना–देना नहीं है । इसके विपरीत विचार हो या मत, खण्डन हो या मण्डन–ये सभी हमेशा ही परस्पर विरोधों एवं द्वन्द्वों में जकड़े होते हैं । एक गहरी धार्मिक चेतना में, जो ''मैं''–रूपी भ्रांति से रहित है, कोई भी विश्वास, छवि, प्रतीक, प्रयोजन, अपराध बोध या लालच नहीं होता तथा किसी भी रूप में स्थूल या सूक्ष्म अहंकार की यात्रा नहीं होती। जबकि अपनी वृद्धि चाहना और उलझन में फँसा रहना, ''मैं'' रूपी भ्रांति की आवश्यकता होती है । 'जो है' अर्थात् यथार्थ को देख पाने की ऊर्जा की कमी, 'ऐसा होना चाहिए' में फँसाये रखती है और इसे ही शायद सहनशीलता कहा जाता है। जब तथ्यों का हम सामना नहीं कर सकते या उनसे पलायन करते हैं, तब हम सहनशीलता का ढोल क्यों पीटते हैं ? विभिन्न धर्मों की अपनी–अपनी मान्यतायें लोगों के बीच शत्रुता के प्रमुख कारण हैं । क्या इस स्पष्ट तथ्य को बता देना असहिष्णु होना है ? लेकिन यदि तुम तथ्यों का सामना नहीं करना चाहते तो मैं कहूँगा कि तुम असहिष्णु हो। यह तथ्य बिल्कुल स्पष्ट है कि हमलोग जब तक विभिन्न विश्वासों (हिन्दू, बौद्ध, यहूदी, ईसाई, मुस्लिम इत्यादि) या अविश्वासों (साम्यवादी, अनिश्वरवादी इत्यादि) या विभिन्न वादों (र्‍रावाद, पूँजीवाद, समाजवाद, प्रजातिवाद, जातिवाद, भाषावाद, उदारवाद, रूढ़ीवाद, व्यक्तिवाद) में बँटे रहेंगे, लोगों के बीच विरोध उत्पन्न होता रहेगा। हम मनुष्य हैं, हम जीवन हैं न कि परस्पर विरोधी विश्वासों, विचारों एवं मतवादों का पिटारा । किन्तु अपनी मान्यताओं एवं मत–वादों में हमारा अपना निहित स्वार्थ छुपा है। क्योंकि इनसे लाभ कमाया जा सकता है। ये ही हमारे समाज के आधार हैं । पुरोहित–वर्ग एवं राजनीतिक इन्हीं पर फलते–फूलते हैं। इसलिए मान्यताओं पर प्रश्न करना तो उनके लिए असहनशीलता ही होगी । लेकिन जो व्यक्ति तथ्य को तथ्य के रूप में देखता है और उसका सामना करता है, वह निश्चित ही सहनशीलता या असहनशीलता में दिलचस्पी नहीं रखता । विश्वास और अविश्वास सभी हमारी पृष्ठभूमि, पालन–पोषण, प्रतिबद्धता, भय, लालच, निर्भरता की चाहत, अनुकूलन इत्यादि के परिणाम स्वरूप बनते हैं। इनका प्रज्ञा, आनन्द, मुक्ति, करुणा और दिव्यता से कुछ भी लेना–देना नहीं। तब भी हमलोग विश्वास किए जाते हैं क्योंकि ऐसा करना अधिक सुविधाजनक होता है, सम्मानजनक और सुरक्षित होता है । यदि हम विश्वास न करें तो हमें काम से निकाला जा सकता है, या ड्ग़िर हम अपने आपको कप्रद अवस्था में पा सकते हैं । अतः मान्यताओं एवं विश्वासों से मुक्त होना ही महत्वपूर्ण है न कि सहिष्णु होना या असहिष्णु।

जहाँ तक मार्गदर्शकों एवं गुरुओं की बात है, आप उनका अनुसरण अपने प्रयोजन सिद्धि या कुछ प्रोत्साहन प्राप्ति हेतु करते हैं । आप हमेशा कुछ चाहते रहते हैं और यह आशा करते हैं कि आपका गुरु उसे पाने में आपकी मदद करेंगे। कुछ पाने की चाहत एवं अनुकरण, समय और मन को जन्म देता है । मन समय है। मन भय है । जो गुरु आपकी इच्छा एवं भय के आधार पर आपका शोषण करते हैं, उनके अनुकरण से समय से मुक्ति सम्भव नहीं है । अनुकरण से संतोष तो होता है किन्तु वह अपराधबोध–ग्रस्तता के द्वारा अपराधबोध से पलायन में मदद करता है । इसके विपरीत, प्रस्फुटन आपको यथार्थ तक ले जाता है जो मन–समय के क्षेत्र से परे होता है ।

जब कुछ भी पाने की चाहत न हो (तकनीकी संदर्भों को छोड़कर), जब शरीरस्थ चेतना वस्तुतः शान्त हो, पूर्णतया स्थिर हो, बिल्कुल प्रयोजन रहित हो, तब जो शरीर में रहनेवाली सत्ता है वही सबकुछ है (या फिर कुछ नहीं है, शून्य है, निर्मन है) । किन्तु इसे मन द्वारा नहीं समझा जा सकता, पुस्तक या धर्मशास्त्र पढ़कर इसे नहीं जाना जा सकता और न ही किसी गुरु से उधार में ली हुई या सीखी गई जानकारियों के माध्यम से ही जाना जा सकता है । ज्ञात ज्ञान नहीं है । जो जानने का दावा करता है वह वस्तुतः नहीं जानता । शून्य का अर्थ है पूर्ण और ''कोई चीज नहीं'' का अर्थ है सबकुछ।

शून्यता और रिक्तता की जय ।